साहित्य-पुरुष : आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी

—साहित्य की श्रीवृद्धि को समर्पित अमृत-पुत्र आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज की साहित्य-साधना

डॉ० रमेशचन्द्र गुप्त
श्री सुमतप्रसाद जैन

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी की साहित्य-समाराधना का प्रेरणास्रोत संत-समागम एवं बाल वैराग्य है। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की अकस्मात् मृत्यु हो जाने से बालगौड़ा (वर्तमान में श्री देशभूषण जी) को अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सरल मन के इस अनाथ बालक ने सांसारिक प्रपंचों को देखकर यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि संसार में सब सम्बन्ध स्वार्थों पर आधारित हैं।

आचार्य श्री ने किशोरावस्था पार करके यौवन की ओर पद-निक्षेप किया ही था कि उनके परिवार में अनायास एक ऐसी घटना घटित हुई जिससे उनका वैराग्य और अधिक प्रगाढ़ हो गया। अपनी नवविवाहिता चाची के कुएं में से निकाले गए शव के वीभत्स रूप को देखकर उन्हें जीवन की क्षणभंगुरता और संसार की असारता का बोध हो गया। उन्होंने तत्काल यह निश्चय कर लिया कि अब मैं विवाह नहीं करूंगा। आचार्य श्री के अनुसार वह करुणाजनक दृश्य एक वर्ष तक निरन्तर उनकी आंखों के समक्ष साकार रूप लेकर खड़ा हो जाया करता था।

संयोग की बात है कि उन्हीं दिनों आपको आचार्य पायसागर जी एवं आचार्य श्री जयकीर्ति जी महाराज का पावन सान्निध्य अनायास ही मिल गया। आचार्य श्री पायसागर जी ने आपको अष्टमूल गुणों के पालन का नियम दिया और आचार्य श्री जयकीर्ति जी महाराज ने आपको यज्ञोपवीत प्रदान किया। इन दोनों संतों की कृपा से आपके जीवन में अभूतपूर्व क्रांति आ गई और आपने जैन सिद्धान्त प्रवेशिका का विधिवत् अभ्यास आरम्भ कर दिया। शुभयोग से आचार्य श्री जयकीर्ति जी ने इनमें छिपी हुई प्रतिभा एवं रचनात्मक शक्ति को पहचानकर इन्हें अपने शिष्यत्व में लेना स्वीकार कर लिया। उन्होंने एक आदर्श गुरु के रूप में अपने शिष्य की समुचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर दिया। उनके पावन संसर्ग में बालगौड़ा ने संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त द्रव्य संग्रह, धनंजय नाममाला, सर्वार्थसिद्धि इत्यादि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया। आचार्य श्री जयकीर्ति ने इनके समुचित विकास के लिए इन्हें संस्कृत, कन्नड़ एवं मराठी के सैकड़ों पदों एवं सूक्तियों को भी कंठस्थ करा दिया। विद्यानुरागी श्री देशभूषण जी अपने धर्मगुरु के असाधारण कृतित्व एवं विद्वत्ता पर असीम श्रद्धा रखते थे। श्री जयकीर्ति जी महाराज की कठोर तपस्या, असाधारण प्रवचन शैली एवं हस्तलेख के अक्षरों की सुन्दर बनावट ने भी इन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया। उनके द्वारा एक पोस्टकार्ड पर तत्त्वार्थ सूत्र तथा भक्तामर के ४८ छन्द लिखे देखकर आचार्य देशभूषण जी को भी कुछ करने की प्रेरणा मिलती थी।

सन् १९३८ में आचार्य श्री जयकीर्ति जी ने अपने इस शिष्य की धर्मनिष्ठा एवं स्वाध्याय की प्रवृत्ति से सन्तुष्ट होकर इन्हें धर्म-प्रभावना के निमित्त स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का आदेश दे दिया और स्वयं संघ सहित तीर्थराज श्री सम्मेद शिखर जी की पावन वन्दना के निमित्त प्रस्थान कर गए। मुनि श्री देशभूषण जी ने गुरु के आदेशानुसार भगवान् बाहुबली की पावन प्रतिमा की छाया में संस्कृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं के गहन अध्ययन में स्वयं को समर्पित कर दिया। इन्हीं दिनों में आपको अपने धर्मगुरु श्री जयकीर्ति जी महाराज के आदर्श उत्सर्ग एवं समाधिपूर्वक प्राण-विसर्जन का हृदयद्रावक समाचार मिला। इस अप्रत्याशित एवं दुःखद समाचार से आपको मर्मान्तिक पीड़ा पहुंची। अपने पूज्य गुरु के सात्त्विक एवं दिव्य गुणों का स्मरण करते हुए आपने उनके चरणचिह्नों पर चलने का शुभ संकल्प लिया।

इसी संकल्प की पूर्ति के लिए आपने ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में जाकर तीर्थंकर वाणी का प्रचार-प्रसार करना प्रारम्भ किया और इसी क्रम में अपने विहार-पथ में आने वाले जिनालयों, जैन पुस्तकालयों, मठों एवं तीर्थक्षेत्रों में संरक्षित एवं सुरक्षित जैन धर्म की असंख्य पांडुलिपियों का अवलोकन भी किया। स्वाधीन भारत से पूर्व आचार्य श्री का कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत एवं उसके निकटवर्ती हिन्दी राज्यों के कुछ प्रान्त रहे हैं। सन् १९३८ से १९४७ तक का कालखण्ड आचार्य श्री की प्रभावक धर्मयात्राओं के लिए विख्यात है। इन पदयात्राओं के सन्दर्भ में आचार्य श्री का व्यापक लोकसम्पर्क हुआ और जैन धर्म के शाश्वत मूल्यों के प्रचार के लिए उन्होंने एक तर्कसम्मत वैज्ञानिक दृष्टिकोण निश्चित कर लिया। इन धर्मयात्राओं में उन्होंने समाज के विद्वत्-वर्ग से गम्भीर विचार-विमर्श किया। विद्यानुरागी महाराज श्री का स्वाध्याय, भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्ययन एवं लेखन कार्य भी निरन्तर चलता रहा है। श्रवणबेलगोल, नागपुर, शोलापुर, बंगलौर इत्यादि विभिन्न स्थानों पर उन्होंने निस्संकोच होकर विद्वानों की सहायता से भारतीय भाषाओं का गहरा अध्ययन किया और अनेक धर्मग्रन्थों के साहित्यिक, धार्मिक एवं दार्शनिक पक्षों पर विचार-विमर्श किया। वयोवृद्ध हो जाने पर भी आज तक इनमें ज्ञान-पिपासा की वृत्ति यथावत् बनी हुई है। ज्ञानाराधन के लिए वे संकोच की सीमाओं को तोड़ते हुए छोटे-बड़े किसी का भी सहयोग लेने में नहीं कतराते। एक युगप्रवर्त्तक दिगम्बराचार्य होते हुए भी उन्होंने ब्रह्मचारी माणिक्य नैनार (वर्तमान में क्षुल्लक इन्द्रभूषण) के सम्पर्क में आने पर उनके माध्यम से तमिल भाषा का अक्षराभ्यास किया। अपनी स्वाध्याय प्रवृत्ति के कारण शीघ्र ही उन्होंने तमिलभाषा में निपुणता प्राप्त कर ली और तमिल के दो प्रसिद्ध महाकाव्यों 'मेरुमन्दर पुराण' एवं 'जीव सम्बोधनम्' का हिन्दी अनुवाद किया।

भारतीय स्वतन्त्रता दिवस (१५ अगस्त १९४७) के अवसर पर आचार्य श्री देशभूषण जी भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस में चातुर्मास कर रहे थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि दक्षिण एवं उत्तर की रागात्मक एकता के लिए एक रचनात्मक सांस्कृतिक अभियान चलाना आवश्यक है। इस अभियान के यज्ञवेत्ता बनकर उन्होंने स्वयं दक्षिण भारत के जैन साहित्य का हिन्दी भाषा में और हिन्दी भाषा के साहित्य का दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने का संकल्प किया। भारतीय भाषाओं में विचारों की एकरूपता, समान शब्दावली इत्यादि का बोध कराने की दृष्टि से प्रादेशिक भाषाओं के ग्रन्थों का उन्होंने स्वयं भी अनुवाद किया और सुधी समालोचकों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया। सन् १९४८ में आचार्य श्री ने सूरत (गुजरात) में चातुर्मास किया और रत्नाकर कवि के कन्नड़ महाकाव्य 'भरतेश वैभव' पर विशेष प्रवचन दिए। आपकी प्रेरणा से ही श्री बाबू भाई शाह एडवोकेट ने इस कालजयी कृति का गुजराती में अनुवाद किया। सन् १९४९ से १९५७ तक आचार्य श्री का कार्यक्षेत्र हिन्दी भाषी प्रान्त रहे हैं। इस कालखंड में आचार्य श्री ने बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान एवं दिल्ली के गांवों में, कस्बों में, नगर, उपनगरों में एवं प्रान्तों में सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने की ज्योति प्रज्जवलित की। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के साकार रूप आचार्य श्री ने इस कालखण्ड में जैन धर्म की पांडुलिपियों के लिए विश्वविख्यात 'जैन सिद्धांत भवन' (आरा) के पुस्तकालय का विशेष रूप से अवलोकन किया।

एक युगप्रमुख आचार्य होते हुए भी आप पुस्तकालय में अनुसन्धान छात्र के रूप में दिन-रात स्वाध्याय एवं लेखन कार्य किया करते थे। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार उन दिनों यह प्रतीत होता था मानों 'जैन सिद्धांत भवन' में श्रुतावतार का आविर्भाव हो गया हो। इस अवधि में आचार्य श्री ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद कार्य किया। इस यात्रा में उन्हें राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश एवं दिल्ली के जिनालयों में उपलब्ध प्राचीन साहित्य को देखने का अवसर भी मिला। सन् १९५८ में आचार्य श्री का कलकत्ता में चातुर्मास हुआ और उन्होंने बंगला भाषा में दक्षता प्राप्त की। उनके प्रवचनों में कभी-कभी बंगला साहित्य के उदाहरण इसी दक्षता के परिणामस्वरूप सहज में आ जाते हैं। इस चातुर्मास में आचार्य श्री ने बंगला भाषा में 'दिगम्बर मुनि' ग्रंथ का प्रणयन भी किया।

सन् १९५९ से १९८६ के कालखंड में आचार्य श्री ने इस पवित्र देश की विराट् परिक्रमा करके मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था का भाव जगाया। एक उदार सन्त के रूप में आपने विश्व के विभिन्न धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया और अपने उपदेशों में उदारतापूर्वक उनका प्रतिपादन करके विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्रीय सद्भाव को बल प्रदान किया। एक दिगम्बर साधक के रूप में आपने आचार्य धर्म एवं उसकी पवित्र मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए विपुल साहित्य की सृष्टि की है और धर्मप्रभावना के निमित्त विद्वानों एवं श्रेष्ठियों का सहयोग लेकर अनेक लुप्तप्राय: रचनाओं से भारतीय साहित्य जगत् को समृद्ध किया है। आचार्य श्री द्वारा प्रणीत, अनूदित, सम्पादित एवं उत्प्रेरित साहित्य की यह सूची इस प्रकार है—

१. भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन
२. भरतेश वैभव—भोगविजय भाग १ खंड १
३. भरतेश वैभव—भोगविजय भाग १ खंड २
४. भरतेश वैभव—भोगविजय भाग १ खंड ३
५. भरतेश वैभव—दिग्विजय भाग २ खंड १
६. धर्मामृत—भाग १
७. धर्मामृत—भाग २
८. रत्नाकर शतक—भाग १
९. रत्नाकर शतक – भाग २
१०. अपराजितेश्वर शतक—भाग १
११. अपराजितेश्वर शतक—भाग २
१२. मेरुमन्दर पुराण
१३. जीव सम्बोधनम् (अप्रकाशित)
१४. णमोकार ग्रन्थ
१५. णमोकार कल्प
१६. शास्त्रसार समुच्चय
१७. निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति
१८. निरंजन स्तुति
१९. भक्ति स्तोत्र संग्रह
२०. भक्तामर सचित्र (अप्रकाशित)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. भावना सार
२२. चौदह गुण स्थान चर्चा
२३. योगामृत
२४. सिरिभूवलय
२५. भूवलय के कुछ पठनीय श्लोक
२६. श्री भूवलयान्तर्गत जयभगवद् गीता
२७. उपदेशसार संग्रह (जयपुर सं० २०११)
२८. उपदेशसार संग्रह—भाग १ दिल्ली, सं० २०१२)
२९. उपदेशसार संग्रह—भाग २ (दिल्ली, सं० २०१२)
३०. उपदेशसार संग्रह—भाग ३ (दिल्ली, स० २०१३)
३१. उपदेशसार संग्रह—भाग ४ (दिल्ली, सं० २०१४)
३२. उपदेशसार संग्रह—भाग ५ (कलकत्ता, सं० २०१५)
३३. उपदेशसार संग्रह—भाग ६ (दिल्ली, वीर नि० सं० २४९०)
३४. दशलक्षण धर्म (दिल्ली, सन् १९५६)
३५. दशलक्षण धर्म (दिल्ली, सन् १९६५)
३६. उपदेशसार संग्रह (कोथली, सन् १९७९)
३७. उपदेशसार संग्रह—प्रथम भाग (जयपुर, सन् १९८२)
३८. उपदेशसार संग्रह—द्वितीय भाग (जयपुर, सन् १९८२)
३९. भगवान् महावीर और मानवता का विकास
४०. ढाई हजार वर्षों में भगवान् महावीर स्वामी की विश्व को देन
४१. भगवान् महावीर की अहिंसा
४२. जैन धर्म का मर्म अहिंसा
४३. भगवान् महावीर का दिव्य सन्देश
४४. अहिंसा का शुभ सन्देश
४५. अहिंसा और अनेकान्त
४६. गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तरी
४७. गुरु-शिष्य-सम्वाद
४८. मानव जीवन
४९. शास्त्र-गुच्छक
५०. ध्यान सूत्राणि
५१. गृहस्थ धर्म : प्राचीन—अर्वाचीन
५२. धर्म
५३. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास—प्रथम खंड
५४. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास—द्वितीय खंड
५५. त्रेसठ शलाका पुरुष
५६. त्रिकालवर्ती महापुरुष
५७. तत्त्व भावना
५८. तत्त्व दर्शन
५९. रयण सार
६०. नियम सार
६१. यशोधर-चरित्र
६२. भक्ति कुसुम संचय
६३. अध्यात्मवाद की मर्यादा
६४. श्री जिनस्तोत्र पूजादि संग्रह
६५. विद्यानुवाद
६६. मन्त्र-सामान्य-साधन-विधान
६७. जीवाजीव विचार
६८. श्रुतपंचमी माहात्म्य
६९. सद्गुरुवाणी
७०. आशा प्रवचन ध्यान
७१. तत्त्वार्थ सूत्र (अंग्रेजी)
७२. द्रव्य-संग्रह (अंग्रेजी)
७३. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (अंग्रेजी)
७४. आत्मानुशासन (अंग्रेजी)
७५. नर से नारायण

मराठो

७६. प्रवचनसार
७७. परमात्म प्रकाश
७८. धर्मामृतसार
७९. भरतेश वैभव सार
८०. दशभक्त्यदि संग्रह
८१. पंचस्तोत्र
८२. निरंजन स्तोत्र
८३. महाश्रमण महावीर
८४. समयसार
८५. निर्वाण लक्ष्मीपति
८६. भगवान महावीर
८७. योगामृत
८८. चिन्मय चिन्तामणि (कन्नड़ से मराठी में)
८९. अनुभव प्रकाश
९०. सूक्तिसुधा

कन्नड़

९१. स्तोत्र सार संग्रह
९२. अध्यात्म सुधासार
९३. श्रमण भगवान् महावीर भाग—१
९४. श्रमण भगवान् महावीर भाग—२
९५. अध्यात्म रस मंजरी
९६. प्रवचन सार
९७. भरतेश वैभव
९८. अष्टप्राभृत (यन्त्रस्थ)
९९. द्वादशानुप्रेक्षा (यन्त्रस्थ)
१००. सर्वार्थसिद्धि वचनिका

बंगला

१०१. दिगम्बर मुनि

गुजराती

१०२. भरतेश वैभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य-पुरुष श्री देशभूषण जी मूलतः दिगम्बर जैन परम्परा के युगप्रमुख आचार्य हैं। मुनि अथवा आचार्य के लिए धर्मशास्त्रों में विहित साधु धर्म का पालन प्राथमिक आवश्यकता है। जैन धर्म में तो आचार्य एवं मुनि से विशेष अपेक्षाएं की जाती हैं। शास्त्रों में वर्णित अट्ठाईस मूलगुणों का पालन उनके लिए आवश्यक है। आचार्य श्री देशभूषण जी की दिनचर्या का एक बड़ा भाग भी सामायिक, प्रतिक्रमण, आहार, प्रवचन, ध्यान, धर्मप्रभावना इत्यादि में व्यतीत होता है। चातुर्मास (वर्षायोग) के समय को छोड़कर उन्हें प्रायः धर्मप्रचार एवं तीर्थ-दर्शन के लिए लम्बी पदयात्राएं करनी होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाले साधक के लिए साहित्य समाराधना हेतु समय निकालना वास्तव में कठिन कार्य है, किन्तु सरस्वतीपुत्र आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी का साहित्य के प्रति असीम अनुराग है। स्वाध्याय के समय उनके मुखमंडल पर एक अपूर्व तेज एवं दिव्यभाव के दर्शन होते हैं। आचार्य श्री को साहित्य के अनुशीलन एवं परिशीलन के क्षणों में तल्लीन देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मपरिज्ञान के द्वारा मोक्षलक्ष्मी के वैभव से उनका तादात्म्य स्थापित हो गया है।

आचार्य श्री की साहित्य-समाराधना के पुष्प प्रायः वर्षाकाल में खिलते हैं। जैन मुनियों के लिए वर्षायोग आत्मसाधना एवं स्वाध्याय का स्वर्णिम अवसर है। आचार्य श्री प्रायः वर्षायोग के समय मुनिचर्या के निर्दोष पालन के अतिरिक्त धर्मप्रचार एवं संस्कृति संरक्षण के लिए श्रावक समुदाय का विशेषतः मार्गदर्शन करते हैं। उन दिनों में आचार्य श्री प्रातः काल से मध्य रात्रि पर्यन्त प्रायः एक ही स्थान पर स्थित रहकर समस्त कार्यों को दिशा-निर्देश देते हैं। उनके आसन के सन्निकट एक चौकी पर स्वाध्याय हेतु अनेक धर्मग्रन्थ, समाचार पत्र एवं सन्दर्भ ग्रन्थ रखे रहते हैं और उन्हीं के मध्य पूर्ण तन्मय होकर आचार्य श्री साहित्य रस में समाधिस्थ हो जाते हैं। इसी कारण चातुर्मास के अवसरों पर उनके द्वारा प्रणीत साहित्य में धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का वे मात्र अनुवाद न करके प्रत्येक शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हैं और अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए कथा-उपकथाओं एवं दार्शनिक विवेचन का सम्बल लेते हैं। इसीलिए उनके द्वारा अनूदित एवं सम्पादित कृतियां मूल आकार में लघु होने पर भी उनकी प्रतिभा के संस्पर्श से विशालकाय धर्म-ग्रन्थों का रूप ले लेती हैं। 'रत्नाकर शतक' के ४५ वें पद्य की ४ पंक्तियों के अनुवाद की व्याख्या मे आचार्य श्री ने १३ पृष्ठों की विस्तृत व्याख्या की है ! प्रस्तुत पद्य में आहार, अभय, भेषज और शास्त्रदान की आवश्यकता एवं उनके स्वरूप का विवेचन किया गया है। आचार्य श्री द्वारा की गई इन उपांगों की विस्तृत व्याख्या ने एक स्वतन्त्र निबन्ध का रूप ही ले लिया है।

इसी प्रकार 'रत्नाकर शतक' के तीसरे एवं सातवें पद्य में भी दर्शन सम्बन्धी विषयों पर पन्द्रह-पन्द्रह पृष्ठों की सविस्तार विवेचना है। ज्ञान-साधना, अनुभव एवं काल-प्रवाह के साथ आचार्य श्री की यह विस्तारवादी व्याख्या-प्रवृत्ति और भी अधिक भास्वर होती गयी है। इसी के फलस्वरूप 'अपराजितेश्वर शतक' के ६७ वें पद्य की व्याख्या में उन्होंने लगभग ३० पृष्ठों में विषय का विस्तृत विवेचन किया है। आचार्य श्री द्वारा प्रणीत परवर्ती रचनाओं में तो उनका धर्मोपदेशक एवं व्याख्याकार का रूप अत्यन्त प्रबल हो गया है। 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन' नामक विशालकाय ग्रन्थ में आचार्य श्री कविवर नवलशाह की कृति 'वर्धमान पुराण' को मूलपाठ के साथ सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना चाहते थे। भगवान् महावीर स्वामी के भव्य एवं विराट् रूप ने उन्हें इतना अधिक मोह लिया कि वे 'स्व' को विस्मरण कर भगवान् महावीर स्वामी के युग में ही विचरण करने लगे। भगवान् महावीर स्वामी से पूर्व की स्थिति एवं उनके द्वारा प्रतिपादित दर्शन ही उनके अध्ययन, मनन एवं अनुसंधान का विषय हो गया। इसी के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा में लिखी गई ३८०६ छन्दों की रचना ने रायल अठपेजी आकार में लगभग ६५० पृष्ठों का बृहद रूप ले लिया। निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री द्वारा संकलित अनूदित रचनाएं यथा—भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, भरतेश वैभव, धर्मामृत, रत्नाकर शतक, अपराजितेश्वर शतक, मेरुमन्दर पुराण, शास्त्रसार समुच्चय, भावनासार, निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति इत्यादि में उनका भाष्यकार रूप अत्यधिक प्रबल हो गया है। किन्तु इन कृतियों में व्याख्या की इस बहुलता को देखकर यह अनुभव नहीं होता कि भाष्यकार ने कहीं भी विषय को बलात् रूप में प्रस्तुत किया है अथवा इस विस्तार के कारण मूल विषय को ग्रहण करने में किसी प्रकार की कठिनाई हो रही है।

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने इस व्याख्यात्मक शैली और भाष्यकार स्वरूप को साभिप्राय अपनाया है। वस्तुतः विदेशी आक्रमणों एवं धर्मान्ध शासकों के शासन काल में भारतीय धर्मों के आचार्यों ने भारतीय विद्याओं को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने की भावना से अपने ग्रन्थों में सूत्र शैली को अपनाया था। सूत्र शैली एवं कंठ विद्या उस समय की आवश्यकता थी। आज हमारा राष्ट्र परतन्त्र नहीं, स्वतन्त्र है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अहिंसामय साधना एवं उत्सर्ग से भारतीय समाज में साम्प्रदायिक कट्टरता भी अधिक नहीं पनप सकी। हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने भी सर्वधर्म सद्भाव की भावना को राष्ट्र की नीति का अभिन्न अंग बना दिया है। इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार के उदार शासनों में जैन एवं जैनेतर धर्मानुयायियों को अपनी कला, संस्कृति एवं साहित्य को विकसित करने का अवसर मिला है। आचार्य श्री ने समय की आवश्यकता के अनुसार सूत्र शैली को भाष्य रूप में परिवर्तित करके युगधर्म का निर्वाह किया है। एक धर्माचार्य के रूप में आचार्य श्री का व्यापक लोकसम्पर्क हुआ है। समाज के सभी वर्गों की बोध-क्षमता से वह भली-भांति परिचित हैं। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री द्वारा किसी रचना का अन्य भाषा में मात्र रूपान्तर कर दिया जाता तो जनसाधारण उसके भाव को पूर्णरूपेण नहीं समझ पाता। आज का मानव अनेकानेक प्रश्नचिह्नों से युक्त है। उसकी अपनी उलझनें हैं। उसके पास समय का अभाव है। वह धर्म और दर्शन की समस्याओं का बोझ अपने मस्तिष्क पर नहीं डालना चाहता। ऐसे संसार-चक्र में भ्रमण करने वाले सन्तप्त प्राणियों की समस्या से अभिभूत होकर करुणाशील आचार्य श्री ने उनकी समस्याओं के निदान के लिए भाष्यकार के रूप में कथारूपी धर्मामृत का अमृत कुंड प्रदान कर दिया है।

अनुवादक के रूप में

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपनी साहित्य-यात्रा में कन्नड़ एवं तमिल के अनेक कालजयी धर्म-ग्रंथों यथा—महाकवि रत्नाकर वर्णी कृत 'भरतेश वैभव', 'रत्नाकर शतक', 'अपराजितेश्वर शतक', श्री नयसेन कृत 'धर्मामृत', मुनि श्री बालचन्द्र कृत 'योगामृत', श्री पुट्टय्या स्वामी कृत 'भावनासार', श्री सुजनोत्तम कृत 'श्री निर्वाण लक्ष्मीपति स्तुति', श्री माघनन्दी कृत 'शास्त्रसारसमुच्चय' श्री वामनाचार्य कृत 'मेरु मन्दर पुराण' अथवा सुप्रसिद्ध तमिल ग्रंथ जीव सम्बोधनम् आदि का हिन्दी भाषा में अनुवाद एवं व्याख्या की है। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उन्होंने कन्नड़ एवं मराठी में अनुवाद किया है। कन्नड़ की अनेक रचनाओं का मराठी एवं गुजराती में भी उन्होंने अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की किसी स्वतन्त्र रचना का उन्होंने अनुवाद नहीं किया तथापि उनके साहित्य में इन भाषाओं के काव्यांशों एवं गद्यांशों का बहुलता से प्रयोग मिलता है। अतः आचार्य श्री अधिकारपूर्वक यथास्थान उनका भी अनुवाद एवं विवेचन करते हैं। आचार्य श्री ने हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़ एवं बंगला में स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं।

जैनाचार्यों के लिए साहित्य की आराधना धर्म-प्रचार एवं मुक्ति का मार्ग है। धर्म के स्वरूप एवं उसमें निहित भावना से जन-साधारण को अवगत कराने के लिए उन्होंने साहित्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इसीलिए समर्थ आचार्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे धर्म-प्रचार के लिए भारतीय भाषाओं एवं विभिन्न लोकभाषाओं (आंचलिक भाषाओं) में दक्षता प्राप्त करें। धर्म-सूत्रों की व्याख्या एवं धर्मग्रंथों के प्रणयन से पूर्व किसी भी आचार्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य का गम्भीर अध्ययन भी करे। बहुभाषाविद् आचार्य श्री ने धर्मग्रंथों के अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व ही भाषाशास्त्र, अर्थ की संस्कारपरकता एवं अर्थनिरूपण की प्रकृति पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था।

अनुवाद कार्य वस्तुतः एक साधना है। किसी भी कवि अथवा लेखक की रचना का अनुवाद करते समय रूपान्तरकार को रचयिता से भावात्मक तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। मूल लेखक के मनोभावों के साथ न्याय करने के लिए उसे विशद अध्ययन करना पड़ता है। काव्य का अनुवाद तो और भी अधिक दुष्कर है। काव्य के अनुवाद में प्रायः अनुवादक काव्य की आत्मा और कवि के मनोभाव के साथ न्याय नहीं कर पाते क्योंकि काव्य स्वयमेव सूत्र शैली में होता है। सूत्रों का रूपान्तर करने के लिए काव्य के वर्ण्य, उसकी व्यापक पृष्ठभूमि, कथा सन्दर्भ, प्रसंग-गर्भ, दार्शनिक शब्दावली इत्यादि का गम्भीर ज्ञान अत्यावश्यक है। अनुवाद प्रारम्भ करने से पूर्व आचार्य श्री अनूदित की जाने वाली रचना का पुनः पुनः अनेक धर्मसभाओं में पाठ और स्थानीय विद्वानों से विचार-विमर्श करते हैं। विषय पर अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त ही वे अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होते हैं। उनके द्वारा किए गए अनुवादों में यशलिप्सा की अपेक्षा आत्मकल्याण एवं धर्मप्रचार की भावना रहती है। अतः उनके द्वारा किए गए अनुवादों एवं व्याख्या में मोक्षसुख का बीज सन्निहित रहता है।

एक कुशल अनुवादक होते हुए भी उन्होंने अपनी स्वाभाविक विनम्रता के वशीभूत होकर भाषा के सम्बन्ध में अपनी 'अल्पज्ञता' को प्रकट करते हुए अनूदित रचना के सारतत्त्व को ग्रहण करने की सलाह दी है। आचार्य श्री के शब्दों में "महाकवि रत्नाकर के 'अपराजितेश्वर शतक' नामक कानड़ी ग्रंथ का अनुवाद करने की मेरे हृदय में उत्कंठा उत्पन्न हुई। पर मुझमें इतनी योग्यता नहीं थी कि इस बड़े भक्तिरसपूर्ण उत्तम ग्रंथ का अनुवाद मैं राष्ट्रभाषा हिन्दी में करता क्योंकि हमारी मातृभाषा कर्नाटकी है। अतः त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। विवेकी पुरुषों को दोष छोड़कर गुण ग्रहण करना चाहिए। इस ग्रंथ में कवि ने भक्ति रस के रूप में बड़े ही सुन्दर ढंग से अध्यात्म रस का वर्णन किया है जिसके पढ़ने-सुनने से पाठकों को अपूर्व रस का आस्वादन होगा और उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी।"

आचार्य श्री ने कन्नड़, तमिल, मराठी, गुजराती इत्यादि प्रादेशिक भाषाओं का अनुवाद करते समय कवि के मूल काव्य एवं कथा को भी देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है। कन्नड़, तमिल, मराठी, गुजराती के पद्यों को देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध कर देने के कारण हिन्दी भाषा-भाषियों को कन्नड़ एवं तमिल की भक्तिपरक रचनाओं का हिन्दी में पाठ करने की सुगमता भी प्राप्त हो गई है। आचार्य श्री के इस प्रयास से हिन्दी भाषा-भाषियों को कन्नड़ इत्यादि भारतीय भाषाओं के माधुर्य एवं शब्दलालित्य से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। आचार्य श्री को उत्तर एवं दक्षिण की विभाजक रेखाओं को मिटाकर उन्हें एक सूत्र में समायोजित करने में सफलता मिली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न आर्ष ग्रंथों को हिन्दी में अनूदित करके प्रकारान्तर से आचार्य श्री ने यह इंगित किया है कि यदि देवनागरी लिपि को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपना लिया जाए तो राष्ट्र की भाषा-समस्या का स्वयं ही समाधान हो जाएगा।

काव्य मान्यताएं

आचार्य श्री की साहित्य-समाराधना का उद्देश्य वीतराग भगवान् की वाणी में रस-निमग्न होकर मोक्ष-सुख की ओर अग्रसर होना है। उनकी मान्यता है कि जिस महाकाव्य अथवा काव्येतर रचना में जीवन को उदात्त बनाने के लिए सर्वशक्तिमान प्रभु की वाणी नहीं है वह रचना कभी भी मधुर एवं सुन्दर नहीं हो सकती। आचार्य नयसेन के माध्यम से उन्होंने अपने कथन को इस प्रकार पुष्ट किया है—

मले इल्लदे पोयनिर्रिबेलेगुमे घरे मरुगि कुदिदु शास्त्रदबर्लादं।
दलिपिं पेक्वोडमदुकोमल मक्कुमे सहजमिल्लदातन कब्बं॥ (धर्मामृत, प्र० अध्याय, पृ० ४६)

अर्थात् जिस प्रकार बरसात के पानी के बिना गन्ना कोमल और सुरस नहीं हो सकता, उसी प्रकार भगवान् की वाणी के बिना कोई सुकवि मधुर और अच्छे शास्त्र की रचना नहीं कर सकता।

अपनी इसी मान्यता पर और अधिक बल देने के लिए आचार्य श्री ने लौकिक जगत् के उपमानों के माध्यम से अपने भाव स्पष्ट करते हुए कहा है—

उप्पिल्दे केलोक्कल तुप्पवनेरेदुण्बेनेंवोडुंबुणिसे स्वा—
दप्पुदे सहज तनगिनि-सप्पोडमिल्लदनकविते रुचिवडेदपुदे॥ (धर्मामृत, प्र० अध्याय, पृ० ४६)

अर्थात् जिस प्रकार रसोई में बिना नमक के सरस शाक आदि भोजन नहीं बन सकता, उसी प्रकार यदि कविता में भगवान् की वाणी का रसास्वाद नहीं होगा तो वह मधुर तथा सुकाव्य नहीं बन सकती।

एक धर्माचार्य के रूप में आचार्य श्री की महाकाव्यों के सम्बन्ध में परम्परा से भिन्न मान्यता है। भामह, दण्डी, रुद्रट इत्यादि ने महाकाव्य के लिए जिन मापदण्डों को निश्चित किया था वे आचार्य श्री को स्वीकार्य नहीं हैं। आचार्य श्री महाकाव्य के लिए ऐसे पात्रों का चयन आवश्यक मानते हैं जिनके पावन चरित्र का गुणगान करने से ८४ लाख योनियों में भ्रमण करने वाले जीव के कर्मों की निर्जरा होकर मुक्ति का मार्ग मिले। महाकवि रत्नाकर वर्णी के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए उन्होंने कहा है—

प्रचुरदि पदनेंटु रचनेय वाक्य के। रंचिसुवरानंतु पेले।
उचितके तक्कष्टु पेलवेन ध्यात्मवे। निचित प्रयोजन वेनगे॥ (भरतेश वैभव, भोग विजय, भाग १, पृ० ६)

अर्थात् कविगण काव्य के कलेवर को पूर्ण करने के लिए समुद्र, नगर, राजा, रानी इत्यादि की पद्धति का निरूपण करते हैं, किन्तु मेरा प्रयोजन भरत की कथा के गान और अध्यात्म का रहा है।

काव्यशास्त्र में महाकाव्य के नायक एवं नायिका के शृंगार निरूपण को भी विशेष महत्त्व देते हुए कहा गया है कि इससे काव्य के गौरव में वृद्धि होती है। आचार्य श्री का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। वे महापुरुषों के पावन चरित्र में आवश्यकता से अधिक शृंगार रस के वर्णन का समर्थन नहीं करते। 'भरतेश वैभव' के भोग विजय की १५ वीं सन्धि में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "पति-पत्नी के एकान्तवास का वर्णन करना बुद्धिमानों का चातुर्य नहीं है।" इसी कारण 'भरतेश वैभव' का अनुवाद करते समय अनेक स्थलों पर उन्होंने संयम का परिचय दिया है। राजा भरत एवं पद्मनी से सम्बन्धित भोगपरक पद्यों का हिन्दी में अनुवाद न करके मार्गदर्शक आचार्य के रूप में उन्होंने लिख दिया है कि आगे का प्रसंग हिन्दी भाषा में अनूदित करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। इसी प्रकार श्री नयसेन कृत 'धर्मामृत' के सातवें आश्वास में सम्यग्दर्शन के स्थितिकरण अंग की कथा में पद्य संख्या १९७ से २१९ तक का अनुवाद भी उन्होंने नहीं किया है। मूल कृतियों के साथ न्याय करने की भावना से अनूदित रचनाओं में मूल पद्यांश अवश्य दे दिया है।

आचार्य श्री की मान्यता है कि रचनाधर्मी साहित्यकारों को लोकापवादों की चिन्ता न करते हुए धर्मकथाओं के लेखन में निरन्तर संलग्न रहना चाहिए। कुछ व्यक्ति केवल दोष-दर्शन करते हैं। बुद्धिमान व्यक्तियों को उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आचार्य नयसेन के माध्यम से सम्यग्दर्शन के स्वरूप का विवेचन करते हुए वे कहते हैं, "सज्जन लोग काव्य में दोषों को ग्रहण नहीं करते। वे केवल उसके सार को देखते हैं। दुर्जन लोग सारगर्भित काव्य होने पर भी उसमें दोष देखते हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नई पीढ़ी के रचनाधर्मी साहित्यकारों के मनोबल को ऊंचा करने के लिए वे कहते हैं कि सृष्टि में ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसमें दोष नहीं है। हमें तो केवल काव्यकार की भावना को दृष्टिगत करना चाहिए—

चंदिनोलगे कप्पुंटु बोलिदगलु। कदि हुदो निर्मल वो।
संधिसि शब्द दोषग लौम्मे सुकथेगे। बंदरे धर्ममासुवदे।। (भरतेश वैभव, भोग विजय, भाग १, पृ० ४)

अर्थात् दोष कहां नहीं है ? क्या चन्द्रमा में कलंक नहीं है ? तो क्या इससे चांदनी कलङ्कित होती है ? नहीं, कदापि नहीं। शब्दगत दोष आ जाए तो इससे क्या कुछ धर्म में अन्तर आ सकता है ?

प्राचीन भारत में धर्म व दर्शन की जटिलताओं के समाधान के लिए संस्कृत भाषा का अवलम्ब लिया जाता था। भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी धर्मदेशना में अर्धमागधी (लोक भाषा) का आश्रय लेकर धर्म के स्वरूप को सभी के लिए सुलभ कर दिया। भगवान् महावीर स्वामी के परवर्ती जैनाचार्यों ने संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, अपभ्रंश एवं आंचलिक भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य का प्रणयन किया है। कन्नड़, तमिल इत्यादि अनेक प्रादेशिक भाषाओं का प्राचीन साहित्य तो वास्तव में जैनाचार्यों की अभूतपूर्व देन है। आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज का भी भाषा के संबंध में उदार दृष्टिकोण रहा है। उनका जन्म कन्नड़ एवं मराठी के सन्धिस्थल जिला बेलगाम में हुआ है। अतः कन्नड़ एवं मराठी दोनों ही उनकी मातृभाषाएं हैं। एक धर्मप्रभावक आचार्य के रूप में उन्होंने अंग्रेजी, तमिल, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, बंगला इत्यादि में भी दक्षता प्राप्त की है। उनकी धर्मप्रभावना लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में हुई है। अतः भारतीय भाषाओं की प्रादेशिक बोलियों, ग्रामीण भाषा इत्यादि से भी उनका परिचय हुआ है। बहुभाषाविज्ञ आचार्य श्री ने भाषा संबंधी अपनी मान्यता को इस प्रकार प्रकट किया है—

"अपनी मातृभाषा सीखने के साथ द्वितीय भाषा के रूप में भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का अध्ययन करना भी आवश्यक है। संस्कृत भाषा में साहित्य, न्याय, ज्योतिष, वैद्यक, नीति, सिद्धान्त, आचार आदि अनेक विषयों के अच्छे-अच्छे सुन्दर ग्रंथ विद्यमान हैं, जिनको पढ़ने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जर्मनी, रूस, जापान आदि विदेशों के विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती है, तब हमारे विद्यार्थी संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ रहें, यह बड़ी कमी और लज्जा की बात है।" (उपदेशसार संग्रह, भाग २, पृष्ठ ३०१)

'अपराजितेश्वर शतक' की समाप्ति पर अपनी विशेष टिप्पणी देते हुए आचार्य श्री ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया है। इस राष्ट्रभाषा हिन्दी के वे सरल और सुबोध स्वरूप के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने अपने अनेक ग्रंथों की भूमिका में भी इस आशय के भाव प्रकट किए हैं। यह विचित्र संयोग ही है कि 'अपराजितेश्वर शतक' के हिन्दी अनुवाद का समापन कार्य राष्ट्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिवस अर्थात् १४-११-१९५५ को सम्पन्न हुआ था। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सरल स्वरूप के सम्बन्ध में पं० नेहरू के विचार भी कुछ इसी प्रकार के थे। वस्तुतः आचार्य श्री भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते हैं। वे किसी भाषा विशेष से बंधे हुए नहीं हैं। उनका लक्ष्य तो धर्ममयी वाणी का प्रचार-प्रसार रहा है। अतः उन्होंने अपनी अनूदित कृतियों में विद्वानों का सहयोग लेकर अनेक अंशों का अंग्रेजी में भी पद्यानुवाद कराया है। आचार्य श्री के शब्दों में, "अंगरेजी अनुवाद केवल इस अभिप्राय से किया गया है कि अन्य देशवासी भी जो कन्नड़ी व हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हैं उन्हें भी इस भारतवर्ष के महान् चक्रवर्ती तथा जैन शासन का पूर्ण परिचय मिल जाए और उनके भाव भी इस अहिंसा धर्म में लगें।" (भरतेश वैभव, भूमिका)

आचार्य श्री द्वारा रचित एवं अनूदित साहित्य का अनुशीलन करने के लिए सुविधा की दृष्टि से इसे निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—पौराणिक साहित्य, दार्शनिक साहित्य, भक्ति साहित्य, उपदेशात्मक-उद्बोधक साहित्य, अन्य विधाओं का साहित्य, प्रेरित साहित्य।

(१) पौराणिक साहित्य

जैनागम के बारहवें श्रुतांग दृष्टिवाद के भेदों में प्रथमानुयोग का उल्लेख मिलता है। प्रथमानुयोग में त्रेसठ महापुरुषों के जीवन-चरित्र का विस्तार से विवेचन किया गया है। त्रेसठ शलाका पुरुषों की सूची का क्रम शास्त्रसार समुच्चय के अनुसार इस प्रकार है—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव।

(अ) **तीर्थंकर**—आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(आ) **चक्रवर्ती**—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिसेन, जयसेन, ब्रह्मदत्त।

(इ) **बलदेव**—रथ, विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नंदिमित्र, राम, पद्म।

(ई) **वासुदेव**—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवर, पुंडरीक, दत्तनारायण, कृष्ण।

(उ) **प्रतिवासुदेव**—अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निसुंभ, मधुकैटभ, बली, प्रहरण, रावण, जरासंध।

भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में राजा श्रेणिक की प्रार्थना एवं जिज्ञासा पर परमपूज्य श्री गौतम गणधर ने त्रेसठ महापुरुषों की कथा, उनके पूर्वभव एवं जिनवाणी के सार का निरूपण किया था। सम्राट् श्रेणिक एवं गौतम गणधर के प्रश्नोत्तर से निःसृत साहित्य को पौराणिक साहित्य कहा जाता है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार त्रेसठ शलाका पुरुषों में वर्णित सभी तीर्थंकर मोक्ष पाते हैं। बलदेव भी ऊर्ध्वगामी होते हैं। वासुदेव और प्रतिवासुदेव अधोगामी होते हैं। चक्रवर्तियों में ऊर्ध्वगामी एवं अधोगामी दोनों होते हैं।

त्रेसठ शलाका पुरुष भव्य होते हैं। भेदाभेद रत्नत्रयात्मक धर्म को धारण कर उसी भव से स्वर्ग जाने की जो कथा कही जाती है उसे अर्थाख्यान कहते हैं। मोक्ष जाने तक जो कथा है वह चारित्र कहलाती है। तीर्थंकर और चक्रवर्ती के कथानक को पुराण कहते हैं। आचार्य श्री द्वारा प्रणीत साहित्य में पुराण, चारित्र एव अर्थाख्यान तीनों का समावेश है।

आचार्य श्री द्वारा प्रणीत साहित्य में प्रथमानुयोग संबंधी सामग्री प्रचुर मात्रा में है। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत इनमें से कतिपय प्रमुख रचनाओं पर विचार-विमर्श किया जायेगा।

भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन

आचार्य श्री का भगवान् महावीर स्वामी के प्रति विशेष रागात्मक सम्बन्ध रहा है। इसी कारण वे भगवान् महावीर की पावन वाणी एवं संदेश को विश्वव्यापी बनाना चाहते हैं। आपने अपने बृहदकाय ग्रंथ 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन' में श्रावक समुदाय को आशीर्वचन देते हुए लिखा है—"यह हमारा सौभाग्य है कि वर्तमान काल में हम सब परम तीर्थंकर शासन देव भगवान् महावीर के कल्याण-कारी शासन-तीर्थ में रह रहे हैं और उनके लोकपावन शासन में रहकर आत्म-कल्याण की राह पर चल रहे हैं। इससे भी अधिक सौभाग्य की बात यह है कि भगवान् महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव मनाने का हमें सुयोग मिल रहा है। इस महोत्सव के उपलक्ष्य में भगवान् महावीर का जीवन-परिचय और उनका तत्त्वदर्शन समझने का सुअवसर सर्वसाधारण को सुलभ करने की भावना हमारे मन में थी।" आचार्य श्री के दृष्टिकोण में भगवान् महावीर स्वामी का स्वरूप अत्यन्त विराट् था। उनकी मान्यता है कि, "व्यक्ति की एक सीमा होती है, वे असीम थे। उनका व्यक्तित्व असीम था। वह देश, काल, जाति आदि की क्षुद्र संकीर्णताओं से अतीत तथा विराट् थे।"

प्रस्तुत ग्रंथ में भगवान् महावीर के पूर्व भवों और वर्तमान जीवन का परिचय दिया गया है। पुरुरवा भील द्वारा मुनि सगरसेन से मद्य-मांसादि के त्याग का नियम, व्रत के प्रभाव से सौधर्म नामक महाकल्प विमान में महाऋद्धिधारी देव स्वरूप को प्राप्त करना, तत्पश्चात् आद्य तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के पौत्र मरीचि के रूप में उत्पन्न होना और फिर अनन्तानन्त भवों में भ्रमण करके अन्तिम तीर्थंकर महावीर के रूप में अवतरित हो जाना इस काव्य का विषय है। भगवान् महावीर स्वामी के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान एवं मोक्षकल्याणक का भी हृदय-स्पर्शी वर्णन है। भगवान् महावीर के पूर्वभवों की कथा के रूप में आचार्य श्री द्वारा दी गई टिप्पणियों से ग्रंथ ने विशाल रूप ले लिया है। प्रस्तुत ग्रंथ के अन्य भागों में जो महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री दी गई है उसके कारण यह ग्रन्थ एक तीर्थंकर का पुराण होते हुए भी महापुराण बन गया है।

भरतेश वैभव

आचार्य श्री को आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के पराक्रमी पुत्र चक्रवर्ती भरत ने विशेष रूप से अभिभूत किया है। सम्राट् भरत हमारे देश की आध्यात्मिक विद्या के गौरव-पुरुष रहे हैं। उनकी विजयवाहिनी ने ही सर्वप्रथम इस देश को एकछत्र शासन के अन्तर्गत संगठित किया था। विक्रम व पौरुष से सम्पन्न सम्राट् भरत वैभव की अट्टालिकाओं में रसक्रीड़ा करते हुए भी परमयोगी थे। इसी साधना के बल पर सम्राट् भरत ने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् युग-युगान्तर के कर्म क्षण भर में निर्मूल करके मुक्ति के पथ को पा लिया था।

आचार्य श्री ने इस मोक्षदायिनी कथा का सरस, रोचक एवं सरल शैली में प्रस्तुतीकरण किया है। इस कथा के माध्यम से आचार्य श्री ने भारत की सुप्त आत्मा को झकझोरा है और सांसारिकता में लिप्त मानवजाति को गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी निर्लिप्त जीवन व्यतीत करने का सन्देश दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मामृत

आचार्य नयसेन कृत धर्मामृत कन्नड़ भाषा का क्लिष्ट ग्रंथ है। प्रस्तुत ग्रंथ में गद्य एवं पद्य के माध्यम से आचार्य नयसेन ने समयग्दर्शन के स्वरूप, उसके आठ अंग एवं पांच व्रतों पर कथाएं प्रस्तुत करके भटकती हुई मानव जाति को धर्मामृत प्रदान किया है।

आचार्य श्री देशभूषण जी की मान्यता है कि कथा साहित्य द्वारा मानव-मन को शीघ्र ही धर्म के पथ पर लगाया जा सकता है। उनके अनुसार जो काव्य या कथा जड़मति के हृदय में प्रवेश कर उसकी रुचि को जागृत कर सके ऐसा सुगम सर्वगम्य काव्य ही काव्य पद का अधिकारी है। धर्मामृत के माध्यम से आचार्य श्री ने अनेक पौराणिक पात्रों का सुधी पाठकों से परिचय कराया है। आचार्य श्री की कथा शैली सहज एवं रोचक है। सभी आयु वर्ग के श्रावक-श्राविका इस कथासागर का समान रूप से आनन्द ले सकते हैं। कथाओं की रोचकता एवं तारतम्यता के कारण पाठक ग्रन्थ को बीच में नहीं छोड़ पाता। इन कथाओं के माध्यम से श्रावक समुदाय को धार्मिक मूल्यों के प्रति अडिग आस्था रखने का सन्देश दिया गया है।

मेरुमन्दर पुराण

श्री वामनाचार्य कृत तमिल ग्रन्थ 'मेरुमन्दर पुराण' में १३ वें तीर्थंकर भगवान् श्री विमलनाथ जी के गणधर मेरु और मन्दर के मोक्ष जाने की कथा है। राजकुमार वैजयन्त अपने पिता मुनि श्री सजयंत पर हुए उपसर्ग के समाचार से क्षुब्ध हो गया था। उसने उपसर्ग-कर्त्ता विद्युद्दृष्ट्र को नागपाश में बांधकर मारने का निश्चय कर लिया था। दैवयोग से उसी समय लांतवकल्प से परिनिर्वाण पूजा के निमित्त आए हुए आदित्यभाव देव से उसकी भेंट हो गई। आदित्यभाव देव ने मेरुमन्दर पुराण के कथापात्रों के पूर्वभव वर्णन के ब्याज से कथाओं का जो वृहद निरूपण किया है उससे पाठकों को यह प्रतीत होने लगता है कि संसार के प्राणियों का सम्बन्ध भाव अस्थायी है। यदि प्राणी को अपना कल्याण करना है तो उसे राग-द्वेष को बढ़ाने वाले प्रसंगों से बचकर आत्मकल्याण के लिए प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार आचार्य श्री ने 'मेरुमन्दर पुराण' की रोचक एवं प्रेरक कथाओं के माध्यम से पाठकों को सांसारिकता से विरक्त होकर आत्मचिन्तन की प्रेरणा दी है।

आचार्य श्री द्वारा प्रणीत अन्य रचनाओं में भी प्रथमानुयोग के स्वर मुखरित होते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि आचार्य श्री को धर्म की मर्यादाओं में प्रतिदिन षड्आवश्यक धर्म का पालन करना होता है। अतः तीर्थंकर भगवान् की स्तुति उनके दैनिक जीवन का अंग-है। आचार्य श्री पौराणिक साहित्य के अध्ययन-मनन से अपने जीवन को गति एवं दिशा देते हैं। एक धर्मसन्त के रूप में राष्ट्र के कल्याण की भावना से उन्होंने पौराणिक साहित्य को सहज, सरल एवं रोचक रूप में प्रस्तुत करके मानव जाति का महान् उपकार किया है।

(२) दार्शनिक साहित्य

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी की दृष्टि में धर्म की गतिशीलता उसके दर्शन शास्त्र में निहित होती है। आचार्य श्री ने श्री गौतम गण-धर एवं राजा श्रेणिक के प्रश्नोत्तर के माध्यम से 'धर्मामृत' में अपनी भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया है—"हे राजन्! कान लगाकर सुनो! बिना राजा के पृथ्वी, बिना भोजन के वृत्ति, बहुमूल्य वस्त्रों के बिना आभूषण, अलंकार के बिना वेश्या, विशेष लाभ के बिना तोड़ा हुआ कमल पुष्प, कमल के बिना तालाब, फसल बिना देश, रक्षा बिना राजा का राजपद जिस प्रकार व्यर्थ है उसी प्रकार दर्शन रहित जो धर्म है, इस जगत् में वह कभी भी शोभा नहीं पाता।"

आचार्य श्री की दर्शनशास्त्र के प्रति सहज रुचि है। 'भावनासार' में आचार्य श्री ने दर्शन सम्बन्धी सूत्रों को समझाने के लिए लौकिक उपमानों एवं प्रचलित कथाओं का आश्रय लिया है। 'वर्धमान पुराण' का सम्पादन करते समय उन्होंने ग्रंथ को उपयोगी बनाने के लिए तत्त्व दर्शन पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की है। इसी कारण ग्रंथ का नाम भी 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन' रखा गया है। इस वृहद्काय धर्मग्रन्थ में भी उन्होंने जैन दर्शन के सार को प्रस्तुत किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आचार्य श्री अपनी कृतियों के माध्यम से जैन दर्शन के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने में निरन्तर सलंग्न रहते हैं। उन्होंने प्रायः सभी रचनाओं में दर्शन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया है। अपनी रोचक एवं उपदेशमयी शैली से दर्शन शास्त्र के गम्भीर विषयों को उन्होंने सरल एवं बुद्धिगम्य बना दिया है। आचार्य श्री की यह मान्यता रही है कि यदि हमें अपने धर्म के शाश्वत मूल्यों की ओर देश-विदेश के बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित करना है तो जैन समाज को दर्शन विषयक ग्रन्थों का विशेष रूप से प्रचार-प्रसार करवाना चाहिए। इसी भावना से उन्होंने श्री पुट्टय्या स्वामी द्वारा कन्नड़ भाषा में लिखी गई 'द्रव्यसंग्रह' की ताड़पत्रीय प्रति की व्याख्या एवं सम्पादन का महान् कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रंथ के सारतत्त्व को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वव्यापी बनाने के लिए उन्होंने हिन्दी टीका के साथ अंग्रेजी अनुवाद भी दे दिया है।

(३) भक्ति साहित्य

आचार्य श्री द्वारा प्रणीत साहित्य का मुख्य प्राण भक्ति भावना है। संसार-चक्र में भटकती हुई आत्मा की मुक्ति के लिए आचार्य श्री स्वयं विदेहक्षेत्र स्थित तीर्थंकर अपराजितेश्वर की शरण में चले जाते हैं। महाकवि रत्नाकर वर्णी की भाव-यात्रा में सम्मिलित होकर वे १२७ पद्यों में प्रभु का स्तवन करते हुए संसार-सागर से पार करा देने की प्रार्थना करते हैं। १२८ वें पद्य में भगवान् का ग्रन्थकार की प्रार्थना पर अभय वचन है, जिसमें कहा गया है—"शंका मत करो, अच्छी तरह भाव लगाकर पूजा करो। यदि इस तरह मन लगाकर पूजा करोगे, स्तुति करोगे तो निश्चयपूर्वक अपराजितेश्वर अनन्तवीर्य स्वामी और श्री मन्दर स्वामी का साक्षात् दर्शन करोगे।"

'रत्नाकर शतक' में भी भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित है। आचार्य श्री भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, "हे रत्नाकराधीश्वर, आप करोड़ों सूर्य और चन्द्र के प्रकाश को धारण करने वाले हैं। आपने इस पृथ्वी के ऊपर पांच हजार धनुष के आकार में सोने और रत्नों के प्रकाश में निर्मित लक्ष्मी-मण्डप के मध्य भाग में स्वर्णमयी कमल की कर्णिका से चार अंगुल के उन्नत प्रदेश में, जय को प्राप्त किया था।" आचार्य श्री की उनसे एक ही भक्तिपूर्ण प्रार्थना है— "आत्म-स्वरूप के प्रति श्रद्धा, उत्कृष्ट ज्ञान और चारित्र इन तीनों को रत्नत्रय कहते हैं। यही रत्नत्रय आत्मा का अलंकार है। इसीलिए ये तीनों रत्न स्वीकार करने योग्य हैं, ऐसा आपने संसारी जीवों को समझाया है। हे भगवन्! उस रत्नत्रय को प्राप्त करने की भावना मेरे हृदय में जागृत करें।"

आचार्य श्री ने णमोकार ग्रन्थ में पंच-परमेष्ठी के स्वरूप का वर्णन करते हुए स्थान-स्थान पर भक्ति से अभिभूत होकर स्तुतिपरक साहित्य प्रस्तुत किया है। उनके मानस में २४ तीर्थंकर सदैव विराजमान रहते हैं। इसीलिए आपके साहित्य में तीर्थंकर भक्ति एवं तीर्थ क्षेत्र वन्दना विशेष रूप से विद्यमान रहती है। भगवान् ऋषभदेव के प्रति आपका अप्रतिम भक्ति भाव है। इसीलिए णमोकार ग्रन्थ में आपने उनके १००८ नाम व्याख्या सहित प्रस्तुत किए हैं। आपकी प्रगाढ़ भक्ति के कारण ही देश के विभिन्न भागों में नित्य नवीन दर्शनीय धर्मस्थलों का विकास हो रहा है।

आचार्य श्री ने श्रावक समाज की सुविधा के लिए अनेक भक्तिपरक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। उनके सद्प्रयासों से जैन मन्दिरों के पूजन में व्यवहृत होने वाली विभिन्न पूजाओं, आरतियों और पाठ एवं प्रविधि के वृहद् संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। आचार्य श्री अपराजित मन्त्र णमोकार के महान् साधक हैं। धर्माराधन के लिए वे स्वयं इस मन्त्र का जाप करते हैं और इसकी अचिन्त्य शक्ति को जीवन की निधि मानते हैं। श्रावक समाज में भक्तिपूर्ण वातावरण बनाने के लिए उन्होंने राजधानी के मन्दिरों से दुर्लभ प्रतियां एकत्र करके 'णमोकार ग्रन्थ' एवं 'णमोमन्त्र कल्प' नामक महान् ग्रन्थों का सम्पादन किया है। आचार्य श्री ने प्राचीन साहित्य का आलोड़न करके अनेक भक्ति स्तोत्रों का संग्रह भी किया है। इस वार्द्धक्य में भी आप भक्तिपरक साहित्य के संग्रह एवं प्रकाशन में रुचि ले रहे हैं।

सन् १९८१-८२ में जयपुर में हुए चातुर्मास के समय आचार्य श्री ने एक मन्दिर के शास्त्र भण्डार से सचित्र भक्तामर को खोज निकाला था। आचार्य श्री की प्रेरणा से यह ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाश में आने वाला है।

आचार्य श्री की एक विशेषता यह है कि बालक-बालिकाओं अथवा अशिक्षित महिलाओं इत्यादि में भक्ति भाव जागृत करने के लिए वे अपने ग्रन्थों में भक्तिपरक अनेक चित्रों को सम्मिलित कर लेते हैं। भरतेश वैभव, भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, णमोकार-ग्रन्थ आदि के सहस्रों चित्र इस दृष्टि से अवलोकनीय हैं।

(४) उपदेशात्मक-उद्बोधक साहित्य

श्रावक समाज को आचार्य श्री के मुखारविन्द से धर्म-श्रवण की विशेष अपेक्षा रहती है। धर्मगुरु के रूप में समाज का समीचीन मार्ग-दर्शन एवं धर्म के स्वरूप का परिज्ञान कराने के लिए उन्हें प्रायः नियमित रूप से उपदेश देना पड़ता है।

जैनधर्म की शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करते हुए साधु एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए पदयात्रा करते हैं। अतः जैन साधुओं का सम्पर्क समाज के विभिन्न वर्गों से स्वयमेव हो जाता है। आचार्य श्री देशभूषण जी अपनी राष्ट्रव्यापी पदयात्राओं के लिए विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से स्मरण किए जाते हैं। पदयात्राओं के समय उनके सम्पर्क में आने वाले धर्मप्रेमियों की जिज्ञासाओं एवं कुतूहल को शान्त करने के लिए उन्हें उपदेशात्मक शैली का आश्रय लेना पड़ता है। उन्होंने अपनी ५१ वर्षीय मुनिचर्या में कितनी धर्मसभाओं को सम्बोधित किया, उनके सम्पर्क में कौन-कौन आया, उनके उपदेशामृत से कितने लाख व्यक्ति अनुगृहीत हुए, आदि प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है, किन्तु उनकी जीवन-सरिणी का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने अब तक १० हजार से अधिक धर्मसभाओं को अवश्य सम्बोधित किया है और उनके सम्पर्क क्षेत्र में कई करोड़ श्रावक आए हैं। उनके प्रवचनों में शासन के सूत्रधारों से लेकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति एवं कल-कारखानों को नया जीवन देने वाले कृषक एवं मजदूर आदि समान रूप में सम्मिलित होते हैं। इसीलिए आचार्य श्री धर्म के स्वरूप एवं अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को जनसभाओं में लोक-कल्याण के लिए व्यक्त कर देते हैं। उनकी पावन वाणी को सर्वसुलभ एवं कालजयी रूप देने की भावना से धर्मशील श्रावक-श्राविकाओं ने उनके उपदेशों को उपदेशसार के रूप में प्रकाशित कराया है।

जैन धर्म की शास्त्रीय मर्यादाओं के अन्तर्गत दिगम्बर मुनि वर्षाकाल में किसी निश्चित स्थान पर चातुर्मास करते हैं। इस प्रकार के प्रवास काल में धर्मसभाओं का विशेष रूप से आयोजन होता है। श्रद्धा से भाव-विभोर होकर श्रावक-श्राविकाएँ उनके उपदेशों को साधनों की सुलभता के अनुसार पुस्तकाकार रूप दे देते हैं। आचार्य श्री के निरन्तर विचरण के कारण उनका उपदेशात्मक साहित्य एक स्थान पर उपलब्ध नहीं हो पाता। यहां हम उनके जयपुर, दिल्ली, कलकत्ता एवं कोथली में हुए उपदेशात्मक साहित्य का ही विश्लेषण कर रहे हैं।

आचार्य श्री के प्रवचनों का विश्लेषण करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि वे मनुष्य भव को मुक्ति का द्वार मानते हैं और इसीलिए संसारी प्राणियों के कल्याण के निमित्त वे आवश्यक मार्ग-दर्शन करते हुए जीवन के प्रत्येक क्षण का सार्थक उपयोग करने का परामर्श देते हैं। महानगरी दिल्ली में सर्वप्रथम मंगल-प्रवेश के अवसर पर विशाल जन-सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने अपनी मान्यता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"मनुष्य भव की सफलता तो उस धर्म आराधन से है जो कि देव पर्याय में भी नहीं मिलता और जिससे आत्मा का उत्थान होता है। आत्मध्यान द्वारा अनादि परम्परा से चली आई कर्म बेड़ी को तोड़कर मनुष्य सदा के लिए पूर्ण स्वतंत्र पूर्णमुक्त भी हो सकता है। तब दुर्लभ नर-जन्म पाकर मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षणों में से एक भी क्षण व्यर्थ नहीं खोना चाहिए।" (उपदेशसार संग्रह, भाग १, पृ० २)

उपदेशों के प्रतिपाद्य विषय को प्रामाणिक एवं विज्ञान-सम्मत बनाने के लिए आचार्य श्री अनेक रोचक संवादों का आश्रय लेते हैं। वृक्षों में आत्मा को सिद्ध करने के लिए उन्होंने कलकत्ता के ईडन बाग़ में हुए डा० जगदीशचन्द्र बोस एवं पं० पन्नालाल जी बाकलीवाल के वार्तालाप को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के संवादों से जैन-धर्म के सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा जागृत करने में वे सफल हुए हैं। इसी प्रकार विषय को प्रभावक एवं वेगमान बनाने के लिए वे प्रायः अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, संस्कृत के मुहावरों व सूक्तियों का प्रयोग करते हैं। समय को अमूल्य सम्पत्ति बताते हुए उन्होंने Time is the money का प्रयोग किया है। घड़ी की सुई से निकलने वाली टिक-टिक ध्वनि के द्वारा उन्होंने कार्य को शीघ्र ही करने का उपदेश दिया है।

भाव को प्रभावशाली बनाने के लिए वे प्रायः अंग्रेजी कविताओं के रोचक अंश प्रस्तुत करते हैं। उपदेशसार प्रथम भाग में प्रयुक्त अंग्रेजी कविता का अंश इस प्रकार है—

"Tick the clock says tick tick tick
what you have to do, do quick"

आचार्य श्री एक आदर्श धर्मसाधक हैं। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना सारा समय आत्मकल्याण के लिए ही केन्द्रित करेंगे। वे अपनी महान् साधना में से समय निकालकर जन-समुदाय का मार्ग-दर्शन क्यों करते हैं? इसका सटीक उत्तर आचार्य श्री ने अपने प्रवचनों में इस प्रकार दिया है—"वीर शासन को व्यापक बनाने के लिए हमारा प्रथम कर्तव्य अपने सामाजिक संगठन को दृढ़ बनाना है। गृहस्थ वर्ग की भाँति व्रती त्यागी लोगों का संगठन भी वीरवाणी के प्रचार के लिए अत्यावश्यक है।" (उपदेशसार संग्रह, भाग १, पृ० १२६)

जैन धर्म में सफल आचार्य को चतुर्विध संघ का पालन करना होता है। अतः मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका सभी को समीचीन धर्मोपदेश देना उनके पद की मर्यादा के अन्तर्गत आता है। आज समाज का रूप अत्यन्त भयावह हो गया है। धर्म एवं लोक की मर्यादाओं को तोड़कर सद्गृहस्थों ने भी भौतिक सम्पन्नता के लिए गलत मार्ग को अपना लिया है। आचार्य श्री अपने धर्मप्रवचनों में समाज में व्याप्त कुरीतियों पर गहरा प्रहार करते हैं। दहेज, रात्रि-भोजन, मद्य-मांस से उत्पन्न होने वाली बुराइयों, चल-चित्रों का कुत्सित रूप, विवाह में होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले भौंड़े प्रदर्शन एवं फिजूलखर्ची पर उन्होंने तीखा प्रहार किया है।

आचार्य श्री भारतीय वाङ्मय के गंभीर अध्येता हैं। जैन धर्म एवं विश्व के अन्य प्रमुख धर्म-ग्रंथों का उन्होंने विशद अध्ययन किया है। उन्होंने अपना समस्त जीवन धर्माचरण में लगा दिया है। अतः उनके उपदेशों में सभी धर्मों का सार स्वयमेव आ जाता है। आचार्य श्री का उपदेशात्मक साहित्य प्रवचन मात्र न होकर धर्म का सार है। वास्तव में उनके द्वारा दिया गया उपदेश और उपदेशात्मक साहित्य अनेक धर्म ग्रन्थों का नवनीत है। इसका स्वाध्याय कर आज की वर्तमान पीढ़ी और भावी पीढ़ी आत्मकल्याण में सफल होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

आचार्य श्री अपने उपदेशों में भारतीय एवं विश्व इतिहास की अनेक प्रेरक एवं रोचक घटनाओं का बहुलता से उल्लेख करते हैं। साथ ही, दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाली घटनाओं का विवरण भी उनके उपदेशों में प्रचुर होता है। चीन के राजवंश, रूस के जार, जर्मनी के कैसर की अन्यायपूर्वक हस्तगत की हुई राज्य सम्पत्ति के दुष्परिणामों का उल्लेख उन्होंने अनेकत्र किया है। भारत-विभाजन एवं उससे उत्पन्न मानवीय पीड़ा का करुण दृश्य भी उनके उपदेशों में मिलता है।

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज के पास अनुभूतियों का भण्डार है। पदयात्राओं के सन्दर्भ में उन्हें अनायास ही भारतीय समाज का अध्ययन करने का अवसर मिल जाता है। स्थान-स्थान पर अनेक व्यक्ति उनसे धर्म संबंधी विषयों पर मार्गदर्शन लेने आते हैं। तत्त्वचर्चा प्रेमी अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए उनके आगे प्रश्नों की बौछार कर देते हैं। समाज के अनेक रंगों से वे परिचित हैं। सभ्य परिवेश की आड़ में पापमय आचरण के प्रसंगों की सत्य कथाओं को उन्होंने सुना है। चम्बल के बीहड़ों में दस्युओं के प्रायश्चित्त भाव के आप साक्षी रहे हैं। इसी प्रकार की अनेक घटनाओं ने उनको जीवन-दृष्टि प्रदान की है। अनुभूत सत्यों से प्रेरित होकर उन्होंने मानवता का मार्गदर्शन करने के लिए भगवान् महावीर और मानवता का विकास, ढाई हजार वर्षों में भगवान् महावीर स्वामी की विश्व को देन, अहिंसा और अनेकान्त, नर से नारायण, मानव जीवन, गुरु शिष्य प्रश्नोत्तरी इत्यादि पुस्तकों का प्रणयन किया है। ये सभी पुस्तकें सरल एवं रोचक शैली में हैं। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि आचार्य श्री पाठक से बातचीत कर रहे हैं।

भारतीय महिला समाज से महाराज श्री को अत्यधिक अपेक्षाएँ हैं। बालकों के पालन-पोषण में माताओं के उपेक्षा भाव को देखकर वे दुःखी हो जाते हैं। ऐसे में वह परिवार के एक वयोवृद्ध सदस्य के रूप में बालकों के जन्म लेते ही धाय एवं विलायती डिब्बे का दूध न पिलाने का परामर्श देते हैं। उनकी मान्यता है कि अच्छी माताएँ ही राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दे सकती हैं। राष्ट्र में प्रचलित बुराइयों के उन्मूलन में वे नारी-जाति का सहयोग चाहते हैं। आचार्य श्री के शब्दों में—"जब हमारी माताओं को नए-नए कपड़े बनाने, फैशन निकालने, बेटा-बेटी के ब्याह में जनखे नचाने से ही अवकाश नहीं मिलता तब हमारी कमर में युद्ध के समय प्रस्तुत होने के लिए तलवार बांधने को स्वर्ग से देवता थोड़े ही आयेंगे। आज हिन्दू ललनाओं को जनखे नचाने और नए-नए फैशन निकालने का शौक चर्राया है तो कल उन्हीं की सन्तान नाटकों में पार्ट करके बाजार में तबले बजा कर अपना जीवन समाप्त कर देगी। जो देश अथवा समाज विलासिता में फँस जाता है वह क्या कभी अपना स्वत्व रख सकता है?" (ढाई हजार वर्षों में भगवान् महावीर स्वामी की विश्व को देन, पृष्ठ ३५)

आचार्य श्री अपने मन्तव्य को प्रभावी बनाने के लिए विचारोत्तेजक ऐतिहासिक प्रमाण भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। विलासिता मनुष्य को कितना कायर बना देती है, इसका उदाहरण देने के लिए आचार्य श्री ने 'ढाई हजार वर्षों में भगवान् महावीर स्वामी की विश्व को देन' में कहा है—

"मोहम्मद शाह रंगीले का समय था। दिल्ली विलासिता के रंग में डूबी हुई थी। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही में मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कलाकौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप रही थी। राज्य कर्मचारी विषयवासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन करने के रोजगार में लिप्त थे। सभी की आंखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही हैं। कहीं चौसर बिछी हुई है। ऐसे समय में लाहौर के शासक का खरीता देहली दरबार में पहुंचा। जिस समय उसमें नादिरशाह की चढ़ाई का हाल पढ़ा गया, उस समय मोहम्मदशाह के दरबार में शराब का दौर चल रहा था, मद्य को पीकर शाह से लेकर दरबारी तक मदमस्त थे। खरीता सुनकर एक दरबारी ने हँसकर कहा था "अजी हजूर असल बात यूँ है कि लाहौर वालों के मकान बहुत ऊंचे हैं, इसी से उन्हें बड़ी दूर की सूझती है। न कोई नादिरशाह है न उसकी इतनी हिम्मत ही है कि वह हजूर जैसे शाह का सामना कर सके।" उस समय इस दरबारी की बात का सबने अनुमोदन किया और शाह की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा से वह खरीता शराब में घोलकर पी डाला गया था। अन्त में मोहम्मदशाह को अपनी अकर्मण्यता के कारण नादिरशाह के हाथ बन्दी होना पड़ा। लालकिले पर अधिकार करके नादिरशाह ने हुक्म दिया कि "मुगलिया खानदान की तमाम बेगमात मेरे आगे आकर नाचें।" यह नादिरशाही हुक्म सुनते ही बेगमों के हाथ के तोते उड़ गये, होशोहवास जाते रहे। भला जिन बेगमों के मखमली गद्दों पर चलने से पैर में छाले पड़ जावें, बगैर छिला अंगूर खालें तो कब्जियत हो जावे, चान्दनी रात में नंगे बदन निकलें तो बदन काला पड़ जावे, वह क्योंकर गैर मर्द के सामने नाचने को प्रस्तुत हो जातीं? परन्तु हील-हुज्जत बेकार थी। नादिरशाह का हुक्म साधारण हुक्म नहीं था। अन्त में लाचार उन्हें नादिरशाह के सामने जाना पड़ा। नादिरशाह को नींद आ गई थी, सिरहाने खंजर रक्खा हुआ था, बेगमें पसोपेश में थीं, आँख खुलते ही नाचना होगा। नादिरशाह की आँख खुली, तेवर बदल कर बोला—"चली जाओ मेरे सामने से, तुम्हारा नापाक साया पड़ने से कहीं मैं भी बुजदिल न बन जाऊँ। आह! तुम अपने ऐशोआराम में फँसने से इतनी बुजदिल हो गई हो कि तुम्हें अपनी अस्मत का भी ख्याल नहीं है। भला जो बेगमें गैर मर्द के सामने जान बचाने की गर्ज से नाचने को तैयार हो सकतीं हैं, उनकी औलाद सल्तनत क्या खाक करेगी? बस, मुझे मालूम हो गया कि अब मुगलिया खानदान हिन्दोस्तान में बादशाहत नहीं कर सकेगा।"

धर्माचार्यों में अपने धर्म के प्रति कट्टरता का भाव देखकर वे दुःखी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनके मुखारविन्द से अनेकान्तमयी वाणी प्रस्फुटित हो उठती है—

"आज गृहस्थी मनुष्यों की बात तो जाने दीजिये। त्यागी साधुओं की दृष्टि भी आज निर्मल नहीं है। सब अपने-अपने सम्प्रदाय के साधुओं को ही श्रेष्ठ और चरित्रशील समझ बैठे हैं। दूसरे सभी उनकी दृष्टि में शिथिल हैं? यह कैसी शोचनीय बात है? कोई मनुष्य गंगा में अपनी नाव चलाये या जमुना में, आखिर तो दोनों समुद्र में ही जाएँगे। लेकिन फिर भी कोई कहे कि गंगा में जाने से ही समुद्र में जाया जाय, जमुना में जाने से नहीं, तो क्या यह ठीक माना जायेगा। वास्तविक सत्य तो यह है कि अपनी चरित्ररूपी नाव मजबूत होनी चाहिए, फिर चाहे कोई किसी भी रास्ते से क्यों न जाय, अपने ध्येय पर पहुंच ही जाएगा। अतः यह सोचना कि हम जिस मार्ग से जा रहे हैं वह मार्ग ही सच्चा और अच्छा है, दूसरा नहीं, नितान्त भ्रामक है।" (मानव जीवन, पृष्ठ १६)

इसी प्रकार धर्म के मूल्यों को विस्मृत कर मांसाहार करने वाले सजातीय हिन्दुओं की सात्विक भावना को जाग्रत करने के लिए वे 'मानव जीवन' में कहते हैं—

"हमारे हिन्दू भाइयो, अगर आपको भारत देश का उद्धार करना है तथा इस आर्य भूमि को पवित्र बनाना या वृद्धि करनी है तो इस भूमि को जिस महान् ऋषि, मुनि, राम, कृष्ण, वशिष्ठ, अर्जुन, परमहंस शुकदेव, भगवान् महावीर व स्त्रियों में सीता सती, द्रौपदी, अहिल्या आदि महान् स्त्री रत्नों ने जन्म लेकर पवित्र किया है, उन्हें हिंसा से कलंकित न कीजिये। अगर इनकी इज्जत रखना चाहते हैं तो इन पूज्य महापुरुषों की वाणी का ख्याल करिये और कृति में लाने का प्रयास करिये। अर्थात् अपने शास्त्रों के अनुसार मांसाहार तथा हिंसावृत्ति को बन्द करने से मानवमात्र का भला होता है और यही सच्चे सुख का एकमात्र मार्ग है। अपनी या अपने देश की भलाई करके जगत् को कल्याण मार्ग पर ले आना आवश्यक है और हमारा गौरव इसी में है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के असाधारण व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति आचार्य श्री के हृदय में श्रद्धाभाव है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी द्वारा किये गए प्रयोगों के वे साक्षी रहे हैं। इसीलिए राष्ट्रनायकों से आचार्य श्री यह अपेक्षा करते हैं कि वे भी महात्मा गांधी के पदचिह्नों का अनुसरण कर विश्व में शान्ति स्थापना में सहयोग देंगे। आचार्य श्री के शब्दों में—"भाइयो, आज इस देश के कोने-कोने में जिस महात्मा गांधी की जय बोली जाती है, इस भारत देश को उसने अहिंसा रूपी शस्त्र को धारण करके ही गुलामी से मुक्त कराया। उन्होंने सभी देशवासियों को इसी मार्ग पर चलने की आज्ञा दी। इससे उत्तम कोई दूसरा मार्ग सुख और शान्ति का नहीं है।"

(मानव जीवन, पृष्ठ १२-१३)

आज के मानव में परस्पर छिद्रान्वेषण एवं अविश्वास भाव का प्राधान्य देखकर आचार्य श्री को यह अनुभव होता है कि इस प्रकार के शंकायुक्त दृष्टिकोण से समाज एवं राष्ट्र के विकास में बाधा पहुंच रही है। धर्मोपदेशक एवं आचार्य होने के कारण आपने इस प्रकार के नकारात्मक चिन्तन को निरस्त करने के लिए कथामय उपदेश दिये हैं। उनके उद्‌बोधक उपदेशों की बानगी इस प्रकार है—

(अ) "एक दिन छलनी ने सूई से कहा—बहिन, तेरे सिर में तो छेद है। बिचारी छलनी यह नहीं जानती थी कि उसके तो सिर में ही छेद है, पर मेरा तो सारा शरीर ही छेदों से भरा पड़ा है। यही हाल आज मनुष्य का है। वह दूसरों के दोष तो बड़ी आसानी से देख लेता है। पर यह नहीं देखता कि मैं कितने दोषों का भागी हूं।" (मानव जीवन, पृष्ठ १५)

(आ) गुजरात के प्रसिद्ध कवि 'दलपत' ने अपनी एक कविता में कहा है—
एक दिन एक ऊंट ने सियार से कहा, यह दुनिया तो बड़ी खराब है।
सियार ने कहा—क्यों मामा, यह कैसे कहते हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊंट ने कहा—देखो न, कहीं बगुले की चोंच टेढ़ी है तो कहीं कुत्ते की पूंछ टेढ़ी है। कहीं हाथी की सूँड टेढ़ी है। मित्र, सब टेढ़े ही टेढ़े इस दुनिया में न जाने कहाँ से भर गये हैं?

सियार ने कहा—ऊंट मामा, यह तो ठीक कहा, लेकिन ज़रा अपने को तो देखो कि तुम कितनी जगह से टेढ़े हो।

मनुष्य का भी ऐसा ही हाल है। वह भी दूसरों के दोष तो देखता है। यह नहीं देखता कि मुझ में भी कितने दोष भरे पड़े हैं। यह तो जानी और मानी हुई बात है कि दूसरे के दोषों को देखने से अपने जीवन में भी दोष आवेंगे और गुणों को देखने से गुण। अतः हमारा जो खराब स्वभाव है कि हम दूसरे के दोषों को ही देखा करते हैं, वह छोड़कर गुणों की तरफ ही अपनी दृष्टि डालनी चाहिए और दोषों की तरफ से आंख मींचकर ध्यान हटा लेना चाहिए।" (मानव जीवन, पृष्ठ १५)

वस्तुतः आचार्य श्री अपनी उद्‌बोधक रचनाओं के माध्यम से एक धर्ममय एवं सुखी समाज की सृष्टि करना चाहते हैं। उनका चिन्तन शाश्वत एवं समाजोन्मुखी है।

(५) अन्य विधाएँ

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपनी राष्ट्रव्यापी पदयात्रा करते समय लगभग सन् १६४०-४१ में पं० ऐलप्पा शास्त्री के शास्त्र भण्डार में एक महान् एवं अद्‌भुत ग्रन्थराज 'सिरि भूवलय' का अवलोकन किया था। उस समय आचार्य श्री नवदीक्षित मुनि थे और प्रभावक धर्मयात्राओं के लिए दक्षिण का भ्रमण कर रहे थे। इस महान् ग्रन्थराज के पूर्ण वैभव का वह उस समय परिचय प्राप्त नहीं कर पाए।

आचार्य श्री के महानगरी दिल्ली में चातुर्मास के समय पं० ऐलप्पा शास्त्री के पधार जाने से आचार्य श्री को इस महान् ग्रन्थ का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ। प्रस्तुत ग्रंथ ६४ अङ्कों में है जिसमें कन्नड़ भाषा के ह्रस्व तथा दीर्घ आदि अक्षर बनते हैं। यह ग्रन्थराज जैनधर्म की विशेषता तथा अन्य धर्मों की संस्कृति का परिचय देता है। इसमें ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषय समाहित हैं। इस ग्रन्थ में १८ महान् भाषाएँ तथा ७०० कनिष्ठ भाषाएं गर्भित हैं। आचार्य श्री के प्रभावक व्यक्तित्व से मुग्ध होकर दानवीर सेठ जुगलकिशोर बिरला ने इस ग्रन्थ के शोधकार्य में व्यय होनेवाली राशि का भार स्वयं वहन करने का दायित्व ले लिया। आचार्य श्री के सद्प्रयासों से जब भारत के विद्यानुरागी राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को इस ग्रन्थ से परिचित कराया गया तो उन्होंने भूवलय को विश्व का आठवां आश्चर्य बताया और इस ग्रन्थ को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की भावना से इसे राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दिया। कर्नाटक राज्य सरकार ने भी इस ग्रन्थ को अंग्रेजी अंकों में बदलने के लिए स्वर्गीय पं० ऐलप्पा शास्त्री को अनुदान रूप में बारह हजार रुपये की राशि प्रदान की थी।

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी ने विश्व साहित्य की अंक शास्त्र में निबद्ध सर्वभाषामय काव्य-रचना 'श्री भूवलय' के अंशों को चक्रबन्ध पद्धति से प्रकट किया है। महान् आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने भूवलय में अंकों के द्वारा प्राचीन महाभारत 'भारत जयाख्यान' को समाहित किया था। आचार्य श्री देशभूषण जी ने अपनी अनवरत साहित्य साधना से श्री भूवलयान्तर्गत जयभगवद् गीता को सर्वसुलभ बना दिया है। महाराज श्री द्वारा श्री भूवलय में से निकाले गए श्री जयभगवद् गीता के कुछ मूल श्लोक एवं उन्हीं के द्वारा किया गया उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—

'स' रुवबांधवर नोयिसि बर्पराजदि, सिरिदंगंबरि 'र्' आ ज्य।
विरलेनगेंदाग कृष्णनु पार्थंगे, कुरुक्षेत्र दोलरिहन न् "अ"।।
"व्" शवाद मेलल्लवे अंतरंगद, कसवेंब अरिय गेल्व न् "क"।
य शदरिहनन नोनागुमत्तामेले, कसदरि हननवप्प न् "ग्"।।

समस्त बन्धुओं की हिंसा करके प्राप्त होने वाले राज्य की अपेक्षा अविनाशी साम्राज्य को प्राप्त करने के लिये मैं दिगम्बर साधु बन कर उसे प्राप्त करूँ—ऐसे पार्थ के वचन सुन कर कृष्ण कहते हैं कि सबसे पहले कुरुक्षेत्र के मैदान में जाकर शत्रु को पराजित कर। तत्पश्चात् मन-शत्रु—क्रोधादि कषायरूप अन्तरंग शत्रु के जीतने के लिये युद्ध कर—अन्तर्वासना रूप ममतामय शत्रु-दल का विनाश कर, ऐसा करने से तू अन्तर्बाह्य शत्रुओं को जीत कर अरिहंत बन जायगा और तुझे वह शाश्वत राज्य प्राप्त हो जाएगा। तब तू सम्पूर्ण विश्व का परमात्मा हो जाएगा।।

'व' न दोलु होक्काग तपदाशे बरलिल्ल, गुणवलिल कीलाद्धदरि "क्"।
अणदेशत्रुवजललनु तूरिकालनु, जनगित्तु तपकयद्गुरु "द्"।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अ"रिहंत कुरुक्षेत्र अरहंत निर्वाण, परियिदनाविय "ओ" दु।
सिरिय नितार्जिसि अर्जुनमुंदन, गुरुवागलेलंक सिद्ध "अ"।।

पार्थ को समझाते हुए श्री कृष्ण आगे कहते हैं कि हे अर्जुन ! अरिहंत नामक कुरुक्षेत्र है और अरहंत नामक निर्वाण क्षेत्र है। इन दोनों क्षेत्रों में से सबसे पहले तू कुरुक्षेत्र में जाकर बाह्य शत्रुओं के साथ लड़कर जिस तरह किसान शालि के भुस (तुष) को उड़ाकर तन्दुल की रक्षा करता है, उसी तरह हे पार्थ ! तू कुरुक्षेत्र में जाकर कर्मशत्रुओं को पराजित करके इष्ट अर्थात् धर्मात्माओं की रक्षा कर। तत्पश्चात् अरहंत नामक निर्वाण क्षेत्र में जाकर भीतरी अन्तरंग कामक्रोधादिक चारों कषायों तथा पांचों इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जीतकर परम स्थान अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त कर।

आचार्य श्री की मान्यता है कि यदि भूवलय का गणितशास्त्र संसार में प्रचलित हो जाए और समांक का विषमांक से विभाग हो जाए तो सब प्रश्न हल हो जायेंगे। अंकों की महिमा बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि भगवान् ऋषभदेव ने एक बिन्दी को काटकर ९ अंक बनाने की विधि बताकर कहा कि सुन्दरी देवी ! तुम अपनी बड़ी बहिन ब्राह्मी के हाथ में ६४ वर्णमाला को देखकर चिन्ता मत करो कि इनके हाथ में अधिक और हमारे हाथ में अल्प हैं। क्योंकि ये ६४ वर्ण ९ के अन्तर्गत ही हैं। इस ९ के अन्तर्गत ही समस्त द्वादशांग वाणी है। यह बात सुनते ही सुन्दरी तृप्त हो गई।

आयुर्वेद जगत् में 'पुष्पायुर्वेद' का नाम श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। पुष्पायुर्वेद मूल रूप में तो उपलब्ध नहीं है किन्तु प्राचीन धर्मग्रन्थों में उसके उद्धरण मिलते हैं। कहा जाता है कि भूवलय में पुष्पायुर्वेद निबद्ध है। स्वर्गीय पं० ऐलप्पा शास्त्री के निधन से 'भूवलय' का अनुवाद कार्य एवं प्रकाशन रुक गया है। यदि जैन समाज इस दिशा में कुछ रचनात्मक कार्य करे तो साहित्य की अनेक निधियों के प्रकाश में आने की सम्भावना है।

(६) प्रेरित साहित्य

आचार्य श्री का जीवन जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार में समर्पित है। वे जैन समाज से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपने धर्म की सांस्कृतिक विरासत से विश्व को परिचित कराये। इसी भावना से वे स्वयं तो साहित्य-सृजन करते ही हैं, साधर्मी विद्वानों को भी साहित्य-लेखन के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

अहिंसा के अवतार भगवान् बुद्ध की पच्चीस सौ वीं जयन्ती के अवसर पर देश-विदेश के बौद्ध विद्वानों का ध्यान भगवान् महावीर स्वामी की वाणी की ओर आकर्षित करने के हेतु आपने अंग्रेजी व्याख्या सहित पूर्वप्रकाशित ग्रन्थों तत्वार्थ सूत्र, द्रव्य संग्रह, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, आत्मानुशासन का पुनः प्रकाशन कराया। आचार्य श्री के इस प्रयास से धर्म-प्रभावना को विशेष बल मिला।

भगवान् महावीर स्वामी के पच्चीस सौवें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर आस्था का दीप प्रज्जवलित करने के लिए आचार्य श्री ने भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, णमोकार ग्रन्थ आदि पुस्तकों का प्रणयन किया और अपने विश्वासपात्र विद्वान् पं० बलभद्र जैन एवं इतिहास-मनीषी स्वर्गीय पं० परमानन्द को प्रेरणा देकर 'जैन धर्म का प्राचीन इतिहास' प्रथमखण्ड एवं द्वितीय खण्ड का लेखन एवं प्रकाशन कराया। इसी प्रकार समय-समय पर उन्होंने श्रावकों की राशि को धर्म-कार्यों में नियोजित कराने की भावना से अनेकानेक अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध ग्रन्थों का प्रकाशन कराया। आचार्य श्री द्वारा प्रेरित साहित्य संख्या की दृष्टि से विशाल होने के कारण उसकी सूची तैयार करना एक कठिन कार्य है। वैसे भी, आचार्य श्री एक अपरिग्रही एवं संचरणशील साधु हैं। कार्य निष्पादित होने के उपरान्त उनकी उसमें रुचि नहीं रहती। जैन शास्त्र भण्डारों में उनके द्वारा प्रेरित साहित्य के रूप में त्रेसठ शलाका पुरुष, त्रिकालवर्ती महापुरुष, तत्त्व भावना, तत्त्व दर्शन, रयण सार, नियमसार, यशोधर चरित्र, भक्ति कुसुम संचय, अध्यात्मवाद की मर्यादा, विद्यानुवाद, मन्त्र-सामान्य-साधन-विधान, जीवाजीव विचार, सद्गुरुवाणी इत्यादि कृतियां उपलब्ध हैं। आचार्य श्री ने इन उपयोगी कृतियों के सम्पादन एवं टीका के लिए विद्वानों को आकर्षित किया और श्रेष्ठिवर्ग को इनके प्रकाशन का व्यय-भार वहन करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार ये अनुपलब्ध कृतियाँ प्रकाश में आईं।

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी की रचना-धर्मिता और सृजन-संकल्प के सन्दर्भ में कुछ विशेषताएँ सहज ही परिलक्षित होती हैं। समाहार रूप में उनका उल्लेख भी आवश्यक है। इयत्ता और ईदृक्ता दोनों ही रूपों में उन्होंने जो सृजन किया है उसमें सागर की अपार जल-राशि के समान केवल विस्तार ही नहीं वरन् अतल गहराई की भांति चिन्तन की गम्भीरता भी है। उनके विचारों के अमृतकण सागर-तल की सीपी से निकले उज्ज्वल मौक्तिक हैं जिनमें कृत्रिम मोती की ऊपरी चमक और मुलम्मा नहीं वरन् जो अपने अन्तर्लावण्य से सहज भास्वर हैं। नैसर्गिक मोती की दीप्ति जैसे धारण करने वाले के शारीरिक लावण्य को अप्रतिम स्निग्धता से श्रीमंडित कर देती है उसी प्रकार इसमें किंचित्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी सन्देह नहीं कि जो श्रावक और मुमुक्षु आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी विरचित विपुल ग्रन्थ-राशि और उपदेश-सन्देश की असंख्य मुक्तावलियों में से किन्हीं दो-चार को भी अपने हृदय-प्रदेश में स्थान देगा वह मानव से अतिमानव और नर से नारायण की कल्पना का स्वयं ही साकार उपमान बन जाएगा।

आचार्य श्री ने जो कुछ भी लिखा है या कहा है उसमें जैन धर्म के सन्दर्भ में अभिव्यक्त होने पर भी धार्मिक या साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं आ पायी। उनकी वाणी मानव-कल्याण के लिए है, किसी विशिष्ट समुदाय या जाति मात्र के लिए नहीं। महापुरुषों का चिन्तन पूर्वाग्रहों से प्रेरित नहीं होता। उनका सन्देश काल और भूगोल की परिधि का अतिक्रमण कर सार्वकालिक और सार्वदेशिक मानव-मूल्यों को रूपायित करता है। इसी कारण आचार्य श्री की सारस्वत साधना में मानव के उदात्तीकरण और उसे परम सिद्ध अवस्था की ओर संचरण करने को प्रेरित करने की संकल्प शक्ति है। रामायण, महाभारत, बाइबिल, कुरान, जैन धर्म-कृतियों, अन्य आर्ष ग्रन्थों अथवा देश-विदेश के अनेक साधु-महात्माओं, दार्शनिकों, चिन्तकों के कथन का जो भी अंश उन्हें मानव के ऊर्ध्वमुखी विकास के लिए सहायक प्रतीत हुआ है उसे उन्होंने उन्मुक्त भाव से अपनी वाणी का अंग बना कर प्रकाशित किया है। संभवतया साहित्य के सुधी पाठकों और समालोचकों ने आचार्य श्री के साहित्य का परिशीलन इस दृष्टि से अभी नहीं किया। धार्मिक साहित्य मानकर इसे शायद वे अधिक महत्त्व नहीं दे पाये, किन्तु इस मौलिक, अनूदित और प्रेरित विशाल ग्रन्थ-राशि में शाश्वत जीवन-मूल्यों की जो सहज व्याप्ति है, उसे जन-जन के लिए उजागर करना परम आवश्यक है। सन्तों ने निस्पृह भाव से जो लिख दिया उसमें लोकेषणा नहीं होती, किन्तु कला-मर्मज्ञों का यह दायित्व हो जाता है कि उन उदात्त बिन्दुओं की ओर समाज की चेतना को संवेदनशील बनायें। और यह तभी हो सकेगा जब सुधी समीक्षक आचार्य श्री की कृतियों का मनन कर उनका निष्पक्ष मूल्यांकन करेंगे। इनमें से अनेक कृतियों की सुगठित संरचनात्मक परिकल्पना, कथात्मक परिदृश्यों की चयन-छटा तथा भाषा की सहज और अनगढ़ प्रस्तुति भारतीय वाङ्मय में अभूतपूर्व है। इनकी प्रबन्धात्मक कृतियों के चरितनायक और उनका कथात्मक संगुम्फन मात्र मनोरंजन के लिए नहीं है, उसमें आत्म-विकास के दिशा संकेत हैं और तत्कालीन-समाज की विचार-दृष्टि, मनोदशा और जीवन मूल्यों को समझने में उनसे सहायता मिलती है। मराठी, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं के धार्मिक साहित्य को देवनागरी हिन्दी में रूपांतरित और व्याख्यायित करके आचार्य श्री ने भाषा-विवाद के समाधान का प्रयास करते हुए भारत की एकात्मकता को बल प्रदान किया है। जैन शास्त्र-भण्डारों में अभी भी असंख्य हस्तलिखित अथवा प्रकाशित—किन्तु सामान्यतया अनुपलब्ध ग्रन्थ बिखरे पड़े हैं, जिनमें अपूर्व भाव-सम्पदा सन्निहित है। उन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का हर सम्भव प्रयास जैन समाज और सम्पन्न श्रावकों को करना चाहिए। ऐसे सद्ग्रन्थों को प्रकाश में लाकर देवनागरी हिन्दी को समृद्ध करना और कोटि-कोटि मानवों के कल्याण-पथ को प्रशस्त करना ही आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज का वास्तविक अभिनन्दन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org